International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(5): 19-22

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(5): 19-22
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 20-05-2022
Accepted: 25-06-2022

डॉ राजिन्द्रा शर्मा
शोधनिर्देशिका संस्कृत विभागाध्यक्ष,
हिमाचलप्रदेश विश्वविद्यालय,
समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश,
भारत

प्रियंका
पी० एच० डी० शोधछात्रा,
हमाचलप्रदेश विश्वविद्यालय,
समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश,
भारत

Corresponding Author:
डॉ राजिन्द्रा शर्मा
शोधनिर्देशिका संस्कृत विभागाध्यक्ष,
हिमाचलप्रदेश विश्वविद्यालय,
समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश,
भारत

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण संरक्षण

डॉ राजिन्द्रा शर्मा, प्रियंका

प्रस्तावना

मनुष्य तथा उसका पर्यावरण दोनों एक दूसरे से इस प्रकार से जुड़े हैं कि दोनों को अलग कर पाना कठिन है। वैदिक वाङ्मय मनुष्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रकृति से जोड़ता है। वर्तमान युग में मनुष्यों में ऐसी प्रवृत्ति का विकास करना आवश्यक हो गया है जिससे वे प्राकृतिक दोहनों का कम से कम एवं संतुलित मात्रा में प्रयोग कर सकें तथा पर्यावरण की पवित्रता को बना सकें। इस दृष्टि से ही प्रस्तुत विषय पर शोध–पत्र प्रस्तुत करना मैंने आवश्यक समझा। वैदिक विचारधारा सदैव पर्यावरण के संरक्षण में अग्रसर रही है। वैदिक ऋषि का मानना है कि प्रकृति की रक्षा में ही मनुष्य की सुरक्षा नीहित है। इसलिए वह सूर्यादि पर्यावरणीय तत्वों की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए तैयार है। 'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः' कहकर ऋषि ने माता समान भूमि की रक्षा करने का निर्देश दिया है। हम भूमि से उतना ही ग्रहण करें जितनी हमें आवश्यकता है। इसी भूमि पर सम्पूर्ण नदियाँ झरने आदि हैं अतः हमारा यह कर्त्तव्य है कि ऐसी पृथ्वी माता को हम हानि कदापि न पहुँचाएं। अन्यत्र पर्यावरणीय तत्व जल को भी वेदों में माँ समान पूजनीय बताया गया है। वही सबको शक्ति प्रदान करता है अतः उसके वास्तविक महत्त्व को समझते हुए उसका सदुपयोग करना चाहिए तभी यह सूक्ति सार्थक होगी 'धर्मो रक्षति रक्षितः'। वेदों में वर्षा के जल को शुद्ध बताकर उसके संग्रहण का भी निर्देश दिया गया है।

वैदिक धारणा यही सन्देश देती है कि जीवनदायी पर्यावरणीय तत्त्व वायु को शुद्ध बनाए रखना मानव का कर्त्तव्य होना चाहिए। वायु सबसे बड़ा शोधक तत्व है जो इसे क्षति पहुंचाता है उसका भी अनिष्ट होता है। विद्युत सूर्य की किरणों से उत्पन्न होती है। इस ऋग्वैदिक कथन से स्पष्ट है कि सूर्य ऊर्जा का अनन्त स्त्रोत है। वैदिक विचार धारा हमें यही शिक्षा देती है कि हम ऊर्जा को समाप्त न कर उसका सदुपयोग करें। वैदिक काल से लेकर वृक्ष हमारे पर्यावरण का महत्त्वपूर्ण हिस्सा माने जाते हैं। ऋषि वायुदेव को भी वृक्षादि को हानि पहुँचाने से मना करता है तो साधारण मानव को तो इसे क्षति कभी भी नहीं पहुँचानी चाहिए। वनस्पति जगत् की सुरक्षा के लिए ऋषि अपना सर्वस्व देने को तैयार हैं अतः वैदिक युग से हमें यही सीख लेनी चाहिए कि यदि मानव अपने कार्यों में पर्यावरण हित को भी शामिल करे तभी वह पर्यावरण से भी लाभ की अपेक्षा कर सकता है, पर्यावरण के संरक्षण में ही मानव जगत् का हित निहित है।

पर्यावरण एक व्यापक शब्द है, इसके अन्तर्गत वह सम्पूर्ण, शक्तियाँ, परिस्थितियाँ एवं वस्तुएं समाहित है जो मानव जगत् को चारों ओर से घेरे हुए हैं। वर्तमान में पर्यावरण शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है, पहले ऐसा कोई पारिभाषिक शब्द नहीं था। प्राचीन कोश ग्रन्थों और संस्कृत हिन्दी कोश में भी प्रायः यह शब्द उपलब्ध नहीं होता। संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में पर्यावरण परि और आङ् उपसर्ग पूर्वक वृ धातु से बना है जिसका अर्थ है ढकना, छिपाना या घेरना।[1]अन्य कोश ग्रन्थ में पर्यावरण का अर्थ जलवायु या पर्यावरण सम्बधी परिस्थितियाँ बताया गया है।[2]

मनुष्य पर्यावरण का महत्त्वपूर्ण घटक है। मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण की आन्तरिक निर्भरता को नहीं पहचान पा रहा है इसलिए सभी ओर प्रदूषण फैल रहा है। वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण के संरक्षण में अपना सर्वाधिक योगदान दिया है। वैदिक युग में तत्त्वज्ञानी विशिष्ट विद्याएं उन्हीं विद्यार्थियों को सिखाते थे जो विवेक शील होते थे। किन्तु आज ज्ञान–विज्ञान सार्वजनिक होने से अल्पमति लोग विवेक के अभाव में साधनों का दुरूपयोग कर दुष्परिणामों को आमन्त्रित कर रहे हैं। जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है। आज का मनुष्यस्वयं को सृष्टिका अङ्ग न मानकर सृष्टि को ही अपनी कृति मान बैठा है। प्रकृति की रक्षा में ही मनुष्य की सुरक्षा निहित है। पर्यावरण की रक्षा के लिए ऋषि अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए तैयार रहे हैं। जैसा कि अथर्ववेद में वर्णन आता है कि मेरे नेत्र सूर्य समान प्रकाशमान, प्राण वायु के समान गतिमान, आत्मा अन्तरिक्ष के समान मध्यवर्ती तथा

शरीर पृथ्वी के समान सहनशील है। ऐसा मैं बिना आवरण के प्रसिद्ध हूँ और सब जानते हैं। मैं अपनी आत्मा सूर्य और पृथ्वी की रक्षा के लिए अर्पित करता हूँ।[3]सूर्यादि प्राकृतिक देवताओं से प्रार्थना करने और उन्हें अपने अनुकूल रहने के लिए निवेदन करने में प्राकृतिक संरक्षण स्वतः ही सिद्ध है। यजुर्वेद में अथर्वण ऋषि देवों को शान्तिपूर्ण कार्य सम्पादन के लिए ऐसा ही निवेदन करते हैं। पवन हमारे लिए सुखपूर्वक वहे, सूर्य हमारे लिए सुखकारी बनकर तपे, अत्यन्त शब्द करता हुआ अग्नि देव शान्ति व कल्याणदायी हो तथा मेघ सब ओर वर्षा करें।[4]वैदिक साहित्य में पर्यावरण और प्रकृति की रक्षा के सन्दर्भ में जो निर्देश दिए गए हैं उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार से किया गया है–

भूमि संरक्षण

'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः'[5]यह ऋषि वाक्य माता रूपी भूमि की रक्षा में ही निहित है। वैदिक विचार धारा मानव को यह प्रेरणा देती है कि आवश्यकता पड़ने पर इस भूमि की रक्षा के लिए वह आत्मबलिदान हेतु तैयार रहें।[6]पृथिवी से उतना ही ग्रहण करें जिसकी क्षतिपूर्ति शीघ्र हो सके।पृथिवी के प्रति संवेदना ही पृथिवी की सुरक्षा का मार्ग है। पृथ्वी की सुरक्षा और उसके प्रति संवेदना का अनुपम उदाहरण केवल पौराणिक साहित्य में ही उपलब्ध है–

यत्ते भूमि विखनामि क्षिपं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पितम्।।[7]

अर्थात् हे भूमि! तेरा जो कोई भाग मैं खोदूँ वह पुनः शीघ्र उग आए। हे खोदने योग्य पृथ्वी मैं न तो तेरे मर्मस्थल पर चोट करूँ और न ही तेरे हृदय को हानि दूं। इस पृथ्वी पर ही सम्पूर्ण समुद्र, नदियाँ, झरने आदि हैं तथा इस पर ही अन्न एवं खेती होती है तथा समस्त जगत् इस पर ही श्वास लेता हैं एवं चेष्टा करता है। यही हमें सुरक्षित रखती है।[8]अतः हम तभी सुरक्षित रह सकते हैं जब हम इस मातृ भूमि को हानि न पहुँचाएं तथा इसके संरक्षण में सर्वदा प्रयासरत रहें।

जल संरक्षण

जल ही जीवन है यह उद्घोष सर्वविदित है। जल के बिना मानव अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता। यदि मनुष्य जल की महत्ता को समझ जाएँ तो पर्यावरण की जल सम्बन्धी समस्या दूर हो सकती है। ऋग्वेद में जल को माता के समान पूज्य बताया गया है जो सबको शक्ति प्रदान करता है–

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृत्पवः पुनन्तु।[9]

अर्थात् जल हमारी माताएँ हैं। वे घृत के समान जल से हमें बलिष्ठ और पवित्र करें, ऐसे सभी जल जो कहीं भी स्थित हों, वे रक्षा करने के योग्य हैं। वेदों में जल की महत्ता को दर्शाते हुए जल सम्बन्धी बातें जानने का आदेश दिया गया है एवं उसके संरक्षण के लिए कहा गया है–

यासु राजा वरूणो यासु सोमो विश्वदेवा यासूर्ज मदन्ति
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टिता आणे देविरीह मामवन्तु।।[10]

हे विद्वान् पुरुषो। जिस आकाश में, प्राणों में या जल में पूरा जगत् जीवन धारण करता है अथवा जिन प्राणों में स्थित योगीजन परमात्मा को प्राप्त होता है तथा जहाँ बिजली प्रविष्ट है, उन जलों को तुम जानों तथा उनकी रक्षा करो। जल के महत्त्व को वैदिक मानव अच्छी प्रकार जानता है। जल का जीवन में कितना महत्त्व है, इससे वे सबको अवगत कराते रहें हैं ताकि लोग जल को व्यर्थ न जानें दें और न ही दूषित करें। जल सभी प्राणियों का रक्षक होता है। जल तभी हमारी रक्षा कर सकता है जब हम उसकी रक्षा करें। कहा भी गया है – धर्मो रक्षति रक्षितः[11]धर्म उसकी रक्षा करता है जो धर्म की रक्षा करता है। अतः हमें जल का संरक्षण करना चाहिए। वेदों में वर्षा के जल के संग्रहण का निर्देश दिया गया है, वर्षा के जल को एकत्र करने हेतु मानवों द्वारा कृत्रिम जलाशय भूमि की खुदाई कर के बनाए जाते थे जिन्हें खनित्रम कहा जाता था इसका उल्लेख ऋग्वेद में इस प्रकार है – जो शुद्ध जल बरसते हैं, जो खोदने से उत्पन्न होते हैं या जो स्वतः आविर्भूत होते हैं वह संग्रहणीय है, उनको एकत्रित करना चाहिए।[12]ऋग्वेद में जल को प्रथम औषधि माना गया है। जल में पूर्ण औषधि तत्त्व और सब रोगों को मिटाने वाले गुण होते हैं।[13]यह ज्ञान जन सामान्य को भी होना चाहिए ताकि वह ऐसे जल को बचाने में सहयोग दें। वैदिक वाङ्मय में जलाशयों के जल की रक्षा में खड़े वृक्षों को काटने हेतु मना किया गया है ताकि जल संरक्षण किया जा सके।[14]यजुर्वेद में भी जल को दूषित करने से मना किया गया है– मा आपो हिंसी[15] अर्थात् जल को नष्ट मत करो, हानि मत पहुँचाओ। जलों से उत्पन्न हुए वृक्ष, वनस्पति अन्नादि का स्वामी जल ही है। जल इन्हें बढ़ाता है। जल विचरण शील प्राणियों को भी इस संसार में बसाने वाला है और उनके दोषों को दूर करने वाला है।[16] अतः स्पष्ट है कि मानव को पर्यावरणीय तत्वों के साथ आत्मीयता एवं संवेदनापूर्ण व्यवहार करना सीखना चाहिए।

वायु संरक्षण

जीवनदायी पवन बहुत संघर्ष करके प्राणियों को जीवनदान देती है वायु के शुद्ध स्वरूप को बनाए रखना मानव मात्र का कर्त्तव्य है। जो भी इसे क्षति पहुंचाता है, वह अपराधी है। अथर्ववेद में वायु प्रदूषण फैलाने वाले कार्यों और प्रवृतियों को नष्ट करने का आदेश देते हुए कहा गया है–

वायो यत्ते तपस्तेन तं प्रतितप।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।[17]

हे पवन देव! जो तेरा प्रताप है उससे उस पर प्रतापी हो जो हमसे अनिष्ट करवाता है या जिससे हम अप्रिय करते हैं। अथर्वा ऋषि के अनुसार वायु सबसे बड़ा शोधक तत्त्व है, उसे क्षति पहुंचाने पर वह भी सबको क्षति पहुँचा सकता है। इसलिए वायु देव से प्रार्थना की गई है कि हे पवन जो तुम्हारी शोधन शक्ति है उस शक्ति से उस दोष को शुद्ध कर दो जो हमसे अप्रिय करवाता है।[18]प्रकृति तो स्वतः ही प्राणियों के अनुकूल रहती है किन्तु मानव द्वारा व्यवधान उपस्थित अगर कर दिया जाए तो प्रकृति अपना विकराल रूप भी दिखाती है। इसी तरह जब मरूत्गण अत्यन्त वेग से प्रवाहित होने लगते हैं तो ऋषि उनसे खेतों की रक्षा हेतु प्रार्थना करते हैं– यत्सीमन्त न धूनुथ।[19]अर्थात् हे पवन! आप तृण, वृक्षादि से युक्त खेतों को मत उखाड़ो। ऐसी प्रार्थना पर्यावरण की सुरक्षा की चेतना को जाग्रत करती है। वेदानुसार वायु के शुद्ध रूप को बनाए रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य होना चाहिए।

ऊर्जा (अग्नि) संरक्षण

अग्नि का अर्थ शक्ति तथा ऊर्जा है। यदि हम सभी आज पर्यावरणीय तत्त्व ऊर्जा का संरक्षण नहीं करेंगे तो आने वाले समय में हमें इसके दुष्परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। इस तथ्य का ज्ञान हमारे वैदिक ऋषि भली–प्रकार से रखते थे। ऊर्जा के उपयोग पर ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो इसका उपयोग यथानुरूप करते हैं तो ऊर्जा के स्त्रोत भी बने रहते हैं। अग्नि से कहा गया है कि जो तेरी रक्षा करते हैं उन्हें तू भी सुरक्षित रख–

नित्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम्।
श्रृत्कर्ण स प्रथस्तमं विप्रा अपने दिविष्टिषु।[20]

अर्थात् हे अग्नि! जो विद्वान् पवित्र पठन–पाठन क्रियाओं में अग्नि के समान जिस ग्रहण कारक ऋतुओं को साथ देने वाले, सब विद्याओं को सुनने व अत्यन्त विस्तार के साथ व्यवहार करने वाले पदार्थों को ठीक से जानने वाले हैं। वे तुझे धारण करते हैं, तू भी उन्हें धारण कर। सूर्य को ऊर्जा का अनन्त स्त्रोत माना गया है। ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विद्युत सूर्य की किरणों से उत्पन्न होती है जो तत्काल सबको जला डालने में सक्षम है।[21]वर्तमान में सूर्य की इसी रूपान्तरित विद्युत से ऊर्जा की आपूर्ति की जा रही है।ऊर्जा के सही रूप को जानकर उसके सदुपयोग से ही पर्यावरण संरक्षण संभव है। यजुर्वेद में प्राकृतिक रूप से विनाशकारी विद्युत एवं अग्नि के ज्ञान एवं सदुपयोग हेतु निर्देश दिया गया है। यथा–

या अग्निरग्नेरध्य जायत शोकात्पृथिव्या दिवस्परि
येन प्रजा विश्वकर्माजजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु।[22]

अर्थात् हे विद्वानों जो अग्नि पृथ्वी को फोड़कर निकलती है तथा जो सूर्य के प्रकाश से बिजली रूपी निकलती है उस विघ्नकारी अग्नि से सब प्राणियों की रक्षा करो जिस अग्नि से ईश्वर सबकी रक्षा करता है उस अग्नि विद्या को जानने का प्रयास करो। पृथ्वी पर विद्युत तथा अन्य शक्ति का स्त्रोत भी सूर्य ही है। सूर्य से ही प्राणियों को ऊर्जा और अन्न प्राप्त होता है इस कारण यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ही सूर्य की ऊर्जा का यशोगान किया है–

इषे तवोर्ज्जे त्वा वायवस्य देवो।
वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण।[23]

हे सूर्य! तुम्हारी दी हुई ऊर्जा और दिया हुआ तेज़ अन्य कार्यों को सिद्ध करने वाला है। हमें आप श्रेष्ठ कर्मों में संयुक्त करो। श्रेष्ठ कर्म का तात्पर्य है कि सौर ऊर्जा को सद्कार्यों में प्रयुक्त करें। ऊर्जा को समाप्त न करें उसे बनाए रखें इसी प्रकार की शिक्षा हमें वैदिक विचार धारा से मिलती है। अथर्ववेद में अग्नि तत्त्व को क्षति पहुँचाने वाले के लिए दण्ड का विधान किया गया है। यथा– अग्ने यत्ते तपस्तेन तं प्रतितप।[24]हे ऊर्जा रूपी अग्नि! जो तुम्हें कष्ट पहुँचाए उसे तुम तपाओ और पीड़ित करो। वैदिक ऋषियों ने ऐसी ऊर्जा को उपयोग करने का आग्रह किया है जो प्राकृतिक है तथा जिस के सदुपयोग से उसके क्षय होने का भय नहीं है एवं जो पर्यावरण की शुद्धता को बनाए रखने में पूरी तरह से सक्षम है।

वनस्पति संरक्षण

वैदिक ऋषि सभी प्रकार की वनस्पति का सदैव संरक्षण एवं संवर्द्धन करते रहे हैं। वृक्ष वनस्पति एवं वनों के संरक्षक है इसलिए सम्मान के योग्य है। अतः ऋग्वेद में ऋषि वृक्षादि की रक्षा हेतु पवनदेव से प्रार्थना करता है कि हे पवन! आप तृण, वृक्ष और हमारे खेतों को मत उखाड़ो। जब हवाओं से भी वृक्षादि को नष्ट न करने की प्रार्थना की गई हो तो मानव को तो कभी इन्हें हानि पहुँचानी ही नहीं चाहिए। वेदों में विद्वान् लोगों से भी यही प्रार्थना की गई कि विभिन्न पक्षियों के आश्रयस्थल वृक्षों को कभी मत काटो।[26]पर्यावरण संरक्षण हेतु आवश्यक है कि वृक्षों को न काटा जाए, जो वृक्ष काटते हैं वे अज्ञानी हैं। वैदिक ऋषि का वनस्पति जगत् की सुरक्षा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करना इस बात का परिचायक है कि मानव के जीवित रहने के लिए वन एवं वृक्षों की अनिवार्यता है–

औषधीरित महातरस्तद्वो देवीरूपब्रवे
सनेसमश्वं गां वासं आत्ज्मनं तव पुरुष।[27]

हे माता के समान हित करने वाली औषधियो! मैं देवियों के समान सुखदायक तथा रश्मियों के समान रोगनाशक रूप से तुम्हारा ज्ञान दूसरों को देता हूँ। मैं औषधियों को प्राप्त करने के लिए अश्व, भूमि, गौ, वस्त्र और स्वयं को भी तेरी प्राप्ति के लिए अर्पित करता हूँ। यदि मानवादि अपने कार्य वनों के हित में करें तो ही वनों से भी लाभ की अपेक्षा की जा सकती है। ऋग्वेद का ऋषि कहता है कि इन वनस्पति की जननी तो प्रकृति है फिर भी वह मानव का ही हित करती है–

यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रोमूलं वीरूधां
बभूव तास्त्वा पुत्रविधाय देवीः प्रावन्त्वोषधयः।[28]

स्वतः उत्पन्नहोने वाली जिन औषधियों के पिता सूर्य है, माता पृथ्वी है, समुद्र जड़ है, ऐसी वे दिव्यगुण वाली औषधियाँ संतान पाने के इच्छुक हे मानव! तेरी रक्षा करें। अतः मानव को इन दिव्य पर्यावरणीय तत्त्वों का उपयोग सुरक्षा की भावना से करना चाहिए। वेदों में वृक्षादि का सम्मान ही नहीं अपितु वृक्षों एवं वनों के संरक्षण एवं पालकों का भी सम्मान किया गया है। यजुर्वेद में कुत्स ऋषि वनों के रक्षकों को नमस्कार करते हुए कहते हैं–

नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो वनानां पतये नमः
वृक्षाणां पतये नमः औषधीनां पतये नमः
वृक्षाणां पतये नमः अरण्यानां पतये नमः।[29]

जिनमें सूर्य की हरणशील किरणें समाहित होती हैं ऐसे महावृक्षों को नमस्कार! वनों के पालकों और रक्षकों को नमस्कार! वृक्षों और औषधियों की रक्षा करने वालों को नमस्कार तथा समस्त वनों के संरक्षक एवं पालकों को नमस्कार! वैदिक काल में ऋषियों ने अपने आश्रमों तपोवनों एवं गुरूकुलों में असंख्य वनौषधियों का संवर्द्धन किया था जिससे विद्यार्थी उसका ज्ञान प्राप्त कर सकें। वेदों में कई महान् वृक्षों के महत्त्व को भी दर्शाया गया है। पीपल का वृक्ष कई रोगों को दूर करने वाला कहा गया है, इसे अश्वत्थ भी कहा जाता है–

पुमान पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि।
स हन्तु शत्रुन् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम्।[30]

अर्थात् हे रक्षा करने वाले पीपल! स्थिर स्वभाव वाले रक्षक परमेश्वर से प्रकट होकर मेरे उन सभी रोगों को नष्ट करें, जिन्हें मैं अपना शत्रु समझता हूँ और जो मुझे शत्रु समझते हैं। वृक्षों में पीपल को सर्वशक्तिमान् बताया गया है। पीपल वृक्ष की पत्तियाँ सदैव चलायमान रहती हैं और वह सदा शुद्ध वायु प्रदान करता है इसलिए अथर्ववेद में कहा गया है कि शक्तिसम्पन्न वृक्षों में स्थिर रहने वाले हे शूर पीपल! तुम अधंकार मिटाने वाले सूर्य से स्नेही बनकर विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करो।[31]वेद कथन है कि वनस्पति शान्ति ही नहीं देती अपितु हितकारी भी होती है। बुद्धिमान मनुष्य को इसके उपयुक्त प्रयोग की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर उन्हें भावी पीढ़ी के लिए संरक्षित भी करना चाहिए–

या रोहन्याडिंरसीः पर्वतेषु समेषु च।
ता नः पायस्वतीः शिवा औषधीः सन्तुशं हृर्दे।।[32]

अर्थात् जो ऋषियों द्वारा बताई गई हैं, जो पर्वतों और मैदानों में उत्पन्न होती हैं, वे बलशाली कल्याणकारी औषधियाँ हमारे हृदय के लिए शान्तिदायक हों। अतः यह पूर्णतया स्पष्ट ही है कि आधुनिक युग में हम सब को अपने वैदिक ऋषियों के अनुसार पर्यावरणीय तत्वों का संरक्षण कर उनका सदुपयोग करना चाहिए ताकि भावी पीढ़ी भी हमारी तरह इनका उचित प्रयोग कर सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृष्ठ, 200
2. राजकमल बृहद हिन्दी कोश, पृष्ठ, 222
3. सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्।
4. अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्योवामृथिवीभ्यां गोपीथाय।। अथर्ववेद, 5.9.7
5. शन्नो वातः पवतां शन्नस्तपुतु सूर्य्यः
6. शन्नः कनिक्रद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षततु।। यजुर्वेद, 36.10
7. अथर्ववेद, 12.1.12
8. वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम। वही, 12.1.63
9. वही, 12.1.35
10. यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यापननं कृष्टयः संबभूवुः
11. यस्यामिदं जिवनित प्राणेदजत् सा नो भूमिः पूर्व पेये दधातु। वही, 12.1.13
12. ऋग्वेद, 10.17.10
13. वही, 7.49.4
14. मनुस्मृति, 8.15
15. या आपो दिव्या उत वा स्त्रवन्ति
16. खनित्रिमा उत वा या स्वयंजः। ऋग्वेद, 7.49.2
17. वही, 10.9.6
18. यदर्णसं मोष था वृक्षं। वही, 5.54.6
19. यजुर्वेद, 6.22
20. ईशानां वार्याणां क्षयन्तीश्वर्शणीनाम् अणो याचाभि भेषजम्। ऋग्वेद, 10.95
21. अथर्ववेद, 2.20.1
22. वाये यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच यो
23. अस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। वही, 2.20.5
24. ऋग्वेद, 1.37.6
25. वही, 1.45.7
26. त्वमग्ने द्युभिस्त्वमा शुशुक्षणि। वही, 2.1.1
27. यजुर्वेद, 13.45
28. वही, 1.1
29. अथर्ववेद, 2.19.1
30. यत्सीमन्तं न धूनुथ। ऋग्वेद, 1.37.6
31. मा काकम्बीरमुद्वहो वनस्पतिम्। वही, 6.48.17
32. वही, 10.97.4
33. वही, 3.5.23
34. यजुर्वेद, 16.16–20
35. अथर्ववेद, 3.6.1
36. तानश्वत्थ निः श्रृणीहि शत्रून् वैबाधदोधतः
37. इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरूणेन च। वही, 3.6.2
38. वही, 8.47.17